राजा ब्रज सुंदर देव

बनाम

मोनी बेहेरा एवं अन्य

मार्च, 27, 1951

[मेहर चंद महाजन, मुखर्जी और चंद्रशेखर अय्यर, न्यायमूर्तिगण]

मत्स्याधिकार — किसी विशेष गाँव के मछुआरों को जमींदार द्वारा कई वर्षों तक मछली पकड़ने की अनुमति — मत्स्याधिकार का अर्जन — लुप्त अनुदान का अनुमान — उपभोगाधिकार — प्रतिकूल कब्जा — धारा 145, दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत कार्यवाही का प्रभाव।

किसी गाँव के निवासियों द्वारा समय-समय पर उपभोग किया जाने वाला अधिकार न तो किसी भू-सम्पदा से संबद्ध होता है और न ही ऐसा अधिकार है जिसे अनुदान का विषय बनाया जा सके, क्योंकि इसके लिए निश्चित रूप से पहचाने जा सकने वाले अनुदान-प्राप्तकर्ता का अभाव होता है।

लुप्त अनुदान का सिद्धांत मूलतः एक तकनीकी उपाय के रूप में विकसित हुआ था, जिससे कि अनादिकालीन उपभोग को सिद्ध करने की असंभवता के बावजूद उपभोगाधिकार के आधार पर अधिकार स्थापित किया जा सके। चूँकि इसका आधार अनुदान है, अतः इसके धारक, चाहे मूल रूप से हों या उत्तराधिकार द्वारा, ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जो अनुदान प्राप्त करने की क्षमता रखते हों।

जहाँ साक्ष्य से केवल इतना ही प्रकट होता है कि कुछ गाँवों के निवासी मछुआरे दीर्घकाल से उन नदियों में, जो किसी जमींदारी से होकर बहती थीं, कुछ जमींदारों की सहमति से मछली पकड़ने का अधिकार प्रयोग करते रहे हैं : *निर्णय,* ऐसे गाँवों में रहने वाले मछुआरों को न तो किसी निगमित निकाय या इकाई के रूप में माना जा सकता है,

जिसके पक्ष में लुप्त अनुदान का अनुमान किया जा सके, और न ही वे प्रतिकूल कब्जा या उपभोगाधिकार के आधार पर मत्स्याधिकार अर्जित कर सकते हैं।

जहाँ, तथापि, जमींदारों और कुछ मछुआरों के बीच धारा 145, दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत कार्यवाही हुई, और दण्डाधिकारी ने यह पाया कि विवादित मत्स्य क्षेत्र पर मछुआरों का कब्जा है, तथा उसने आदेश दिया कि विधि द्वारा विधिवत बेदखल किए जाने तक उनका कब्जा बना रहेगा और उस कब्जे में कोई विघ्न नहीं डाला जाएगा, और जमींदारों द्वारा सीमिती अधिनियम के अनुच्छेद 47 के अनुसार तीन वर्षों के भीतर उस आदेश को निरस्त कराने के लिए कोई कदम नहीं उठाया गया : *निर्णय,* धारा 145 की कार्यवाही के पक्षकार रहे मछुआरों के संबंध में दण्डाधिकारी का आदेश अंतिम हो गया और वे मत्स्य क्षेत्र पर कब्जा बनाए रखने के अधिकारी हो गए।

किसी निश्चित स्थान पर मत्स्याधिकार का अनन्य होना यह अभिप्रेत करता है कि उस अधिकार के दावेदार के समान व्यापक अधिकार किसी अन्य व्यक्ति के पास न हो। मात्र इस तथ्य से कि कोई अन्य व्यक्ति उस मत्स्य क्षेत्र में किसी विशेष प्रकार की मछली पकड़ने का अधिकार रखता है, अथवा कोई अन्य व्यक्ति वर्ष के किसी निश्चित समय में मछली पकड़ने का अधिकारी है, अनन्य मत्स्याधिकार किसी प्रकार प्रभावित नहीं होता।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : दीवानी अपील सं. 42 वर्ष 1948

पटना उच्च न्यायालय (फज़ल अली, मुख्य न्यायाधीश एवं एस. सी. चटर्जी, न्यायमूर्ति) द्वारा दिनांक 21 अप्रैल, 1943 को प्रथम अपील सं. 17 वर्ष 1939 में पारित निर्णय एवं डिक्री के विरुद्ध अपील, जो कि पुरी के अधीनस्थ न्यायाधीश द्वारा मूल वाद सं. 62 वर्ष 1936 में दिनांक 19 जुलाई, 1939 को पारित डिक्री से उत्पन्न हुई थी।

अपीलकर्ता की ओर से *मनोहर लाल* (*जी. पी. दास,* उनके साथ)।

उत्तरदाताओं की ओर से *बी. एन. दास* (*सर कान्त महान्ति*, उनके साथ)।

1951, मार्च 27 — न्यायालय का निर्णय प्रस्तुत किया गया :

महाजन, न्यायमूर्ति — इस अपील में विवाद किल्ला मरीचपुर के नौ गाँवों में निवास करने वाले मछुआरों, जो पुरी समाहरणालय(उड़ीसा राज्य) की एक स्थायी बंदोबस्त वाली जमींदारी है, तथा आउल के राजा, जो उक्त जमींदारी में सात आना, सात पाई एवं दस करंट हिस्से के स्वामी हैं, के मध्य है। जमींदारी के शेष अंश प्रतिवादी सं. 19 से 29 के पास हैं। उक्त संपदा की सीमा के भीतर "देवी नदी" अपनी विभिन्न शाखाओं एवं उपनदियों सहित प्रवाहित होती है। "मधुर्दिया", "मरीचपुरदिया" एवं "मलदिया" नामक तीन मत्स्य क्षेत्र इस जमींदारी से संबद्ध हैं। वर्तमान अपील में विवाद "मधुर्दिया" मत्स्य क्षेत्र से संबंधित है।

वर्ष 1936 में, आउल के राजा द्वारा प्रतिवादी सं. 1 से 18 के विरुद्ध, जो स्वयं तथा किल्ला मरीचपुर के नौ गाँवों के अन्य मछुआरों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, उपर्युक्त तीनों मत्स्य क्षेत्रों के संबंध में अपने अधिकार की घोषणा हेतु वाद सं. 62, 63 एवं 64 दायर किए गए। इन सभी वादों का निर्णय विचारण न्यायालय द्वारा वादी के पक्ष में किया गया। प्रतिवादियों ने वाद सं. 63 एवं 64 में कोई अपील दायर नहीं की, फलतः उन दोनों वादों से संबंधित मत्स्य क्षेत्रों के संबंध में विवाद विचारण न्यायालय के निर्णय से अंतिम रूप से समाप्त हो गया। तथापि, वाद सं. 62 वर्ष 1936 में प्रतिवादियों द्वारा उच्च न्यायालय में अपील दायर की गई, जिसे आंशिक रूप से स्वीकार किया गया। विचारण न्यायालय द्वारा वादी के पक्ष में पारित डिक्री में संशोधन करते हुए यह निर्णय दिया गया कि प्रतिवादियों को 'इच्छाधीन काश्तकार' के रूप में हिल्सा मौसम (मार्गशीर्ष से बैसाख) के दौरान उक्त मत्स्य क्षेत्र में मछली पकड़ने का अनन्य अधिकार प्राप्त है, तथा उस अवधि के संबंध में

वादी को किसी घोषणा अथवा निषेधाज्ञा का अधिकार नहीं है। तत्पश्चात वादी ने महामहिम की प्रिवी काउंसिल में अपील करने की अनुमति प्राप्त की, और वर्तमान अपील उसी के निर्णयार्थ हमारे समक्ष प्रस्तुत है।

वादपत्र में यह अभिकथित किया गया कि मरीचपुर जमींदारी के स्वामीगण विवादित मत्स्य क्षेत्र के अनन्य स्वामी हैं और वे निरंतर उसमें मछली पकड़ने का अपना अधिकार कभी मछुआरों को नियोजित करके तथा कभी उन्हें मत्स्य क्षेत्र पट्टे पर देकर प्रयोग करते रहे हैं; कि वादी, जमींदारी हित के अपने अधिग्रहण के पश्चात से, अपने हिस्से के अनुसार मत्स्याधिकार का खास कब्जे में स्वामी रहा है; कि प्रतिवादी-मछुआरे उक्त मत्स्य क्षेत्र के कभी कब्जे में नहीं रहे और न ही उनका उस पर कोई अधिकार है; कि वर्ष 1918 में उन्होंने अपने कब्जे के साक्ष्य निर्मित करने के उद्देश्य से दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अंतर्गत कार्यवाही प्रारंभ की, किन्तु उन कार्यवाहियों के बावजूद वादी मत्स्य क्षेत्र के कब्जे में बना रहा तथा मछुआरों को नियोजित कर मछली पकड़ता रहा; कि जमींदारी में अनेक सह-भागीदार होने तथा संपदा के दुरुप्रबंधन का लाभ उठाकर प्रतिवादियों ने मई, 1933 से नवंबर, 1933 के मध्य समय-समय पर अवैध एवं अनधिकृत रूप से मत्स्य क्षेत्र में अतिक्रमण किया, वादी के अधिकार के उपभोग में बाधा डाली तथा बिना किसी अनुमति या अनुज्ञप्ति के बड़ी मात्रा में मछली पकड़कर वादी एवं उसके सह-भागीदारों को क्षति पहुँचाई। इन अभिकथनों के आधार पर वादी ने यह घोषणा चाही कि प्रतिवादी सं. 1 से 18, अपनी व्यक्तिगत तथा प्रतिनिधिक क्षमता में, "मधुर्दिया" मत्स्य क्षेत्र अथवा नदी खंड के रूप में अभिलेखित क्षेत्र के दक्षिणी भाग, रिसिलो एवं हुसगढ़, में किसी प्रकार का अधिकार या स्वत्व नहीं रखते। इसके अतिरिक्त, प्रतिवादियों को उक्त

मत्स्य क्षेत्र एवं उपर्युक्त खंडों में मछली पकड़ने से स्थायी निषेधाज्ञा द्वारा रोकने तथा क्षतिपूर्ति एवं मछली के मूल्य के रूप में धनराशि प्रदान करने की भी प्रार्थना की गई।

प्रतिवादियों ने वादपत्र में किए गए अभिकथनों का प्रतिवाद किया और यह प्रतिपादित किया कि किल्ला मरीचपुर के मछुआरे, जिनमें प्रमुख प्रतिवादी एवं उनके पूर्वज सम्मिलित हैं, कुल मिलाकर लगभग 846 व्यक्ति, "चरखटिया" उर्फ "मधुर्दिया" मत्स्य क्षेत्र पर प्रति वर्ष ₹ 135-7-0 के निश्चित वार्षिक भाड़े पर निरंतर, निर्विघ्न एवं वास्तविक भौतिक कब्जे में रहे हैं, तथा उस भाड़े के भुगतान पर उन्हें स्थायी रूप से कब्जे में बने रहने का अधिकार है; और यह कि उन्होंने यह अधिकार सभी संभावित विधियों से, अर्थात् अनुदान, प्रथा, प्रतिकूल कब्जा तथा उपभोगाधिकार के माध्यम से अर्जित किया है।

पक्षकारों के इन अभिवचनों के आधार पर विचारण न्यायाधीश ने कुल नौ मुद्दे निर्धारित किए, जिनमें से मुख्य मुद्दे सं. 6 एवं 7 निम्नलिखित थे :—

"6. क्या वादी को विवादित मत्स्य क्षेत्र पर कोई स्वत्व प्राप्त है?

7. क्या प्रतिवादी सं. 1 से 18 ने प्रतिकूल कब्जा, उपभोगाधिकार अथवा रिवाज द्वारा कोई अधिकार अर्जित किया है?"

इन मुद्दों पर विचारण न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रतिवादी न तो अपनी व्यक्तिगत क्षमता में और न ही प्रतिनिधिक क्षमता में उक्त मत्स्य क्षेत्र पर कोई अधिकार या स्वत्व रखते हैं, और उनके विरुद्ध उस मत्स्य क्षेत्र में मछली पकड़ने से रोकने हेतु स्थायी निषेधाज्ञा जारी की। हानि-क्षति का दावा अस्वीकृत कर दिया गया। माननीय न्यायाधीश ने यह अवलोकन किया कि प्रतिवादियों ने मत्स्य क्षेत्र में उपलब्ध समस्त मछलियों को पकड़ने का अधिकार दावा नहीं किया था, बल्कि उन्होंने अपना दावा केवल हिल्सा मछली तक सीमित रखा था, वह भी हिल्सा मौसम, अर्थात् मार्गशीर्ष से बैसाख

(नवंबर से अप्रैल) के मध्य। वर्ष के शेष समय में उपलब्ध अन्य प्रकार की मछलियों के संबंध में उन्होंने कोई अधिकार अभिकथित नहीं किया। यह भी अभिलक्षित किया गया कि प्रतिवादियों ने इस तथ्य का खंडन नहीं किया कि वादी जमींदारी का स्वामी है और इस प्रकार भूमि तथा मत्स्य क्षेत्र के जल का भी स्वामी है; किन्तु उन्होंने एक गौण अधिकार, अर्थात् वादी एवं उसके सह-भागीदारों के स्वामित्व वाले जल में हिल्सा मौसम के दौरान, वादी एवं उसके सह-भागीदारों को अपवर्जित करते हुए, मछली पकड़ने का अधिकार होने का दावा किया। इन दावों के आलोक में प्रतिवादियों पर यह दायित्व आरोपित किया गया कि वे अनुदान, रिवाज, उपभोगाधिकार अथवा प्रतिकूल कब्जा के आधार पर अपने स्थायी मत्स्याधिकार को सिद्ध करें। यह प्रतिपादित किया गया कि प्रतिवादी इस दायित्व का निर्वहन करने में असफल रहे। यह भी निर्धारित किया गया कि अनुदान, उपभोगाधिकार तथा प्रतिकूल कब्जा के माध्यम से ऐसे अनिश्चित एवं परिवर्तनशील व्यक्तियों के समूह के पक्ष में अधिकार का अर्जन विधि की दृष्टि में सिद्ध नहीं किया जा सकता। मत्स्य क्षेत्र में स्थायी काश्तकारी के दावे को इस आधार पर अस्वीकार किया गया कि ऐसा कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जिससे यह सिद्ध हो कि यह काश्तकारी वर्ष 1842 में इसे ग्रहण करने वाले व्यक्तियों से उत्तराधिकार द्वारा इन 846 व्यक्तियों को प्राप्त हुई, अथवा यह कि यह समस्त सोलह आना जमींदारों से प्राप्त हुई थी, या यह कि भाड़ा की कोई स्थिरता थी। आगे यह भी कहा गया कि अधिकार के स्वामियों की पहचान, उस स्थानीय क्षेत्र की निश्चितता जहाँ यह अधिकार प्रयोग किया जाना था, अधिकार की सीमा तथा उसके प्रयोग की अवधि—इन सभी के संबंध में कोई निश्चितता नहीं है; अतः इन परिस्थितियों में प्रतिवादियों का दावा स्वीकार नहीं किया जा सकता। प्रतिवादियों का यह तर्क कि भारतीय परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 47 के अंतर्गत वादी अपना अधिकार खो चुका है, असंगत माना गया तथा

रिवाज का आधार इस कारण अस्वीकार कर दिया गया कि कथित रिवाज अविवेकपूर्ण प्रकृति की होती।

विचारण न्यायालय में उठाए गए समस्त प्रश्नों को, रिवाज के प्रश्न को छोड़कर, प्रतिवादियों द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष भी उठाया गया। उच्च न्यायालय ने, एक ऐसा निर्णय देते हुए जो न तो पूर्णतः स्पष्ट था और न ही संतोषजनक, यह निष्कर्ष निकाला कि प्रतिवादी अपने पूर्वजों के समय से ही विवादित मत्स्य क्षेत्र में लुप्त अनुदान के आधार पर अधिकारपूर्वक मछली पकड़ते रहे हैं, तथा वादी का यह कथन कि वह मत्स्य क्षेत्र का उपभोग करता रहा है, असत्य है, और यह कि प्रतिवादियों का उक्त मत्स्य क्षेत्र में मछली पकड़ने का अधिकार स्थापित है। ऐसी स्थिति में यह अपेक्षित था कि वादी का वाद खारिज कर दिया जाता, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। उच्च न्यायालय ने आगे यह अभिलक्षित किया कि यद्यपि साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि प्रतिवादी अथवा उनके पूर्वज वर्ष 1842 से दीर्घकाल से इस अधिकार का उपभोग करते रहे हैं, तथापि यह निष्कर्ष निकालने हेतु कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है कि उन्हें स्थायी अधिकार प्राप्त हुआ था। अतः प्रतिवादियों का यह अभिकथन कि वे विवादित मत्स्य क्षेत्र के स्थायी काश्तकार हैं, स्वीकार नहीं किया गया। जहाँ तक प्रतिवादियों के इस तर्क का संबंध है कि वादी दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अंतर्गत पारित आदेश से आबद्ध है, यह पाया गया कि वादी ने निर्धारित अवधि के भीतर उस आदेश को चुनौती नहीं दी, फलतः परिसीमा अधिनियम की धारा 28 के अधीन विवादित मत्स्य क्षेत्र के खास कब्जे का उसका अधिकार, पाँच पाई हिस्से को छोड़कर, समाप्त हो गया; तथापि उसका स्वामित्वाधिकार बना रहा, क्योंकि उसे कभी नकारा नहीं गया था। यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि उक्त मत्स्य क्षेत्र पर वादी का खास कब्जे का अधिकार भारतीय परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 144 के प्रवर्तन के

कारण भी समाप्त हो गया। वादी द्वारा प्रस्तुत यह साक्ष्य कि वह हिल्सा मौसम के दौरान अन्य मछुआरों को नियोजित कर मछली पकड़ता रहा, अविश्वसनीय माना गया तथा यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रतिवादी विवादित मत्स्य क्षेत्र में हिल्सा मौसम के दौरान वादी एवं अन्य सह-भागीदारों के प्रतिकूल, बारह वर्ष से अधिक अवधि तक, अनन्य मत्स्याधिकार का प्रयोग करते रहे हैं। इन निष्कर्षों के बावजूद उच्च न्यायालय ने एक कुछ विचित्र निष्कर्ष निकाला कि प्रतिवादियों ने प्रतिकूल कब्जा द्वारा मात्र इच्छाधीन काश्तकारी अर्जित की है, तथा इस काश्तकारी का समापन केवल समस्त जमींदारों के संयुक्त रूप से किया जा सकता है। चूँकि वादी केवल एक सह-भागीदार है, अतः वह अपने व्यक्तिगत स्तर पर वर्तमान वाद प्रस्तुत करने का अधिकारी नहीं है, और इस वाद के संस्थापन का प्रभाव काश्तकारी की समाप्ति के रूप में नहीं माना जा सकता। फलतः वादी को घोषणा अथवा ऐसी निषेधाज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती, जिससे प्रतिवादियों को हिल्सा मौसम के दौरान मछली पकड़ने से रोका जाए। वादी द्वारा यह बिंदु भी उठाया गया कि नदी के प्रवाह-पथ में परिवर्तन के कारण विवादित मत्स्य क्षेत्र वही नहीं रहा, जिसके संबंध में धारा 145, दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आदेश पारित हुआ था अथवा जिसमें प्रतिवादी अपना अधिकार प्रयोग करते रहे थे। उच्च न्यायालय ने इस तर्क को असंगत माना, यह कहते हुए कि नदी वही है, तथा पुराने अथवा नए, दोनों प्रकार के चैनल, जो मधुर्दिया अथवा चरिखटिया मत्स्य क्षेत्र का भाग हैं, सदैव एक संयुक्त जलराशि का निर्माण करते रहे हैं। यह भी कहा गया कि ऐसी संयुक्त जलराशि के विभिन्न भागों में, जो एक ही मत्स्य क्षेत्र का हिस्सा हैं, मछली पकड़ना पृथक आक्रामक कृत्य नहीं माना जा सकता, जिससे प्रतिकूल कब्जे की निरंतरता अथवा सीमा बाधित हो। आगे यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि यद्यपि मछुआरों का समूह परिवर्तनशील है, तथापि उनके हित एवं कब्जे में एकता है, और उन्हें

अनेक स्वतंत्र अतिक्रमणकारियों के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता। इन निष्कर्षों के परिणामस्वरूप विचारण न्यायाधीश की डिक्री में संशोधन किया गया तथा वादी के पक्ष में स्थायी निषेधाज्ञा जारी की गई, जिसके द्वारा प्रमुख प्रतिवादियों को विवादित मत्स्य क्षेत्र में मछली पकड़ने से रोका गया, सिवाय हिल्सा मौसम (मार्गशीर्ष से बैसाख) के, जिसके दौरान प्रतिवादियों को अनन्य मत्स्याधिकार प्राप्त घोषित किया गया।

उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध प्रतिवादियों द्वारा कोई अपील दायर नहीं की गई, यद्यपि उन्हें केवल इच्छाधीन काश्तकार के रूप में मत्स्य क्षेत्र के कब्जे में माना गया था। वादी ने उक्त निर्णय को चुनौती दी तथा इस निष्कर्ष का प्रतिवाद किया कि प्रतिवादी विधिसम्मत रूप से मत्स्य क्षेत्र के कब्जे में थे और हिल्सा मौसम के दौरान अनन्य रूप से मछली पकड़ने का अधिकार प्रयोग कर सकते थे। वादी की वास्तविक शिकायत यह प्रतीत होती है कि अपीलाधीन निर्णय द्वारा उच्च न्यायालय ने एक परिवर्तनशील व्यक्तियों के समूह को इच्छाधीन काश्तकार घोषित कर दिया है, जबकि ऐसी काश्तकारी का समापन संभव नहीं है, क्योंकि उसका स्वरूप जन्म एवं मृत्यु तथा इन गाँवों में मछुआरों के आगमन एवं निर्गमन के साथ निरंतर परिवर्तित होता रहता है। यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष त्रुटिपूर्ण रूप से निकाला कि प्रतिवादी मत्स्य क्षेत्र के कब्जे में थे तथा लुप्त अनुदान के आधार पर मत्स्याधिकार का उपभोग कर रहे थे, और यह भी कि परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 47 एवं 144 को धारा 28 के साथ पढ़े जाने पर वादी का खास कब्जे का अधिकार समाप्त हो गया था। यह भी प्रतिपादित किया गया कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों से उचित निष्कर्ष केवल यह निकलता है कि समय-समय पर कुछ मछुआरों को अनेक जमींदारों द्वारा भाड़े के भुगतान पर इन जलों में मछली पकड़ने की अनुमति दी जाती थी, किन्तु वर्तमान प्रतिवादी उन मछुआरों के वंशज नहीं हैं

जिन्हें कभी-कभार इस प्रकार की अनुमति प्रदान की गई थी। आगे यह भी कहा गया कि मत्स्य क्षेत्र को पट्टे पर देने के वे पृथक-पृथक कृत्य परस्पर संबद्ध नहीं थे, और उनसे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि प्रतिवादी या उनके पूर्वज स्थिर भाड़े के भुगतान पर निरंतर मत्स्य क्षेत्र के कब्जे में रहे हों; अतः वर्तमान प्रतिवादी मात्र अतिक्रमणकारी हैं और उन्हें विवादित मत्स्य क्षेत्र में मछली पकड़ने का कोई अधिकार नहीं है। अतिरिक्त रूप से यह भी अभिकथित किया गया कि प्रतिवादियों के पक्ष में किसी भी प्रकार का स्वत्व अनुमानित नहीं किया जा सकता, विशेषतः लुप्त अनुदान के आधार पर, क्योंकि इस प्रकरण में कोई सक्षम अनुदान-प्राप्तकर्ता नहीं है; और न ही वे प्रतिकूल कब्जा अथवा उपभोगाधिकार के आधार पर कोई अधिकार अर्जित कर सकते हैं, क्योंकि वे एक अनिश्चित एवं परिवर्तनशील व्यक्तियों का समूह हैं। जहाँ तक उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष का संबंध है कि वादी का वाद परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 47 के अधीन अवरुद्ध है तथा भारतीय परिसीमा अधिनियम की धारा 28 के प्रावधानों के प्रवर्तन से उसका खास कब्जे का अधिकार समाप्त हो गया है, यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि वर्ष 1918 में संपन्न कार्यवाहियों को गलत रूप से दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अंतर्गत चिह्नित किया गया था, जबकि वस्तुतः उन कार्यवाहियों में पारित आदेश संहिता की धारा 147 के अंतर्गत आता था; अतः अनुच्छेद 47 का इस मामले में कोई अनुप्रयोग नहीं था और वादी पर यह बाध्यता नहीं थी कि वह अपने अधिकार के प्रवर्तन हेतु उस आदेश की तिथि से तीन वर्षों के भीतर वाद दायर करे। आगे यह भी प्रतिपादित किया गया कि उक्त आदेश का लाभ केवल उन पक्षकारों तक सीमित था जिन्हें उन कार्यवाहियों में पक्षकार बनाया गया था, और अन्य प्रतिवादी उससे कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकते थे; और किसी भी दशा में वह आदेश वादी को उस हिस्से तक बाध्यकारी नहीं ठहरा सकता, जिसे उसने उन सह-

भागीदारों से क्रय किया था जिन्हें उन कार्यवाहियों में पक्षकार नहीं बनाया गया था। यह भी तर्क दिया गया कि वर्ष 1925 में नदी के प्रवाह-पथ में परिवर्तन होने के कारण, वर्ष 1918 में जो मत्स्य क्षेत्र अस्तित्व में था, वह अब अस्तित्व में नहीं रहा, और प्रतिस्थापित मत्स्य क्षेत्र के संबंध में वादी का अधिकार धारा 145, दण्ड प्रक्रिया संहिता की कार्यवाही में पारित आदेश के प्रभाव से समाप्त नहीं माना जा सकता। प्रतिवादियों की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रतिवाद किया कि प्रतिवादी काश्तकारों की स्थिति में उक्त मत्स्य क्षेत्र में अनन्य मत्स्याधिकार रखते हैं तथा ₹ 135-7-0 के निश्चित वार्षिक भाड़े के भुगतान पर उन्हें स्थायी रूप से उसके उपभोग का अधिकार प्राप्त है; और यह कि हिल्सा मौसम के दौरान मत्स्य क्षेत्र में वादी का मछली पकड़ने का अधिकार भारतीय परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 47 तथा अनुच्छेद 144 के प्रवर्तन से समाप्त हो चुका है। यह भी अस्वीकार किया गया कि नदी के प्रवाह-पथ में किसी प्रकार के परिवर्तन से, यदि कोई हुआ भी हो, प्रतिवादियों के अधिकार पर किसी प्रकार का प्रभाव पड़ा है। पक्षकारों के परस्पर विरोधी तर्कों के समुचित मूल्यांकन हेतु यह आवश्यक है कि उन कुछ तथ्यों का उल्लेख किया जाए, जो इस प्रकरण में प्रस्तुत दस्तावेजी साक्ष्यों से प्रतिपन्न होते हैं।

उड़ीसा राज्य वर्ष 1803 में ब्रिटिश शासन के अधीन आया। राज्य का राजस्व बंदोबस्त वर्ष 1904-05 में किया गया। बंदोबस्त के दौरान तैयार किए गए ग्राम-नोट से यह प्रतीत होता है कि किल्ला मरीचपुर मूलतः पद्मलाव मंगराज के स्वामित्व में था और उसके प्रपौत्र बलभद्र मंगराज के समय, उसके द्वारा लिए गए ऋणों की अदायगी हेतु यह संपदा नीलामी में बेची गई, जिसे (1) मोहन भगत, (2) चक्रधर महापात्र तथा (3) हाजिरान निसा बीबी के पूर्वजों ने समान हिस्सों में क्रय किया। वर्ष 1842 की जमाबंदी (प्रदर्श सी) से यह ज्ञात होता है कि उस समय किल्ला मरीचपुर जमींदारी की जलकर आय

₹ 135-7-0 थी, जो कि दो मछुआरों, हरि बेहेरा एवं ब्रुन्दु अनुकूल सिंह से वसूल की जा रही थी। इस दस्तावेज़ से यह स्पष्ट नहीं होता कि वे किस हैसियत से यह राशि अदा कर रहे थे तथा उनकी काश्तकारी का स्वरूप क्या था। प्रदर्श ए वर्ष 1845 की एक कबूलियत है, जो ब्रुन्दु अनुकूल सिंह एवं हरि बेहेरा द्वारा बाबू मोहन भगत तथा बीबी मुबारक निसा के पक्ष में निष्पादित की गई थी। इससे यह प्रकट होता है कि इन दोनों मछुआरों ने देवी नदी में मत्स्याधिकार का पट्टा ₹ 135 वार्षिक भाड़े पर जमींदारों से लिया था। उसमें यह उल्लेख था कि ये मछुआरे पूर्व रिवाज के अनुसार इन जलों में मछली पकड़ेंगे तथा किस्तों के अनुसार ₹ 135 "मछिदिया सरबरा" का भुगतान करेंगे। कबूलियत में इस बात का कोई संकेत नहीं है कि ये दोनों व्यक्ति इसे किसी प्रतिनिधिक क्षमता में निष्पादित कर रहे थे, अथवा यह कि उनके द्वारा लिया गया पट्टा स्थायी प्रकृति का था, या यह कि देय भाड़ा भविष्य में वृद्धि के अधीन नहीं था। प्रतिवादियों की ओर से यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि उक्त दोनों व्यक्तियों ने यह कबूलियत प्रतिनिधिक क्षमता में तथा किल्ला मरीचपुर के उन सभी मछुआरों की ओर से निष्पादित की थी, जो प्रारंभ में चार गाँवों में निवास करते थे और बाद में वादपत्र में उल्लिखित नौ गाँवों में बस गए। इस अभिकथन के समर्थन में अभिलेख पर प्रस्तुत एकमात्र साक्ष्य, जिस पर उच्च न्यायालय ने भी निर्भर किया, बचाव साक्षी 11 का बयान है, जिसका जन्म लगभग वर्ष 1873 में हुआ था, अर्थात् कबूलियत के निष्पादन के लगभग 28 वर्ष पश्चात, और जिसके पास इस बात की कोई विशेष जानकारी का स्रोत नहीं है कि कबूलियत में उल्लिखित व्यक्तियों का वर्तमान वाद के प्रतिवादियों से क्या संबंध था, अथवा कबूलियत निष्पादित करने वाले व्यक्तियों की क्षमता क्या थी। अतः यह मानना संभव नहीं है कि उक्त कबूलियत इन दोनों व्यक्तियों द्वारा प्रतिनिधिक क्षमता में तथा वर्तमान विवाद में हित रखने वाले सभी व्यक्तियों की ओर से निष्पादित की गई थी।

अभिलेख पर ऐसा कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जो वर्ष 1845 से 1873 के मध्य इस मत्स्य क्षेत्र की स्थिति को स्पष्ट कर सके। प्रतिवादियों ने अपने पक्ष के समर्थन में अनेक किराया रसीदों पर निर्भर किया। इनमें प्रथम रसीद दिनांक 30 मार्च, 1873 की है, जिसे महापात्र सह-भागीदारों में से एक द्वारा "चरखटिया" मत्स्य क्षेत्र के भाड़े की एक किस्त, जो हरि बेहेरा एवं रामा बेहेरा के माध्यम से ₹ 8-12-0 की राशि के रूप में अदा की गई थी, के संबंध में निष्पादित किया गया था। इस रसीद में सभी सह-भागीदार पक्षकार नहीं थे तथा यह भी उल्लेखित नहीं है कि संपूर्ण मत्स्य क्षेत्र के लिए कुल देय भाड़ा कितना था। दिनांक 11 मई, 1875 को एक अन्य रसीद बीबी मसूदन्निसा एवं अन्य, जो जमींदारी में पाँच आना चार पाई के सह-भागीदार थे, द्वारा हरि बेहेरा, अनन्त हेहरा एवं अन्य के पक्ष में ₹ 18 की राशि के लिए निष्पादित की गई। इससे यह प्रतीत होता है कि विभिन्न सह-भागीदार विभिन्न व्यक्तियों को निश्चित धनराशि के भुगतान पर मत्स्य क्षेत्र में मछली पकड़ने की अनुमति प्रदान कर रहे थे। अभिलेख पर ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे यह सिद्ध हो सके कि वर्ष 1873 की रसीद, जो दो सह-भागीदारों द्वारा दो व्यक्तियों को दी गई थी, का संबंध उस रसीद से है जो अन्य सह-भागीदारों द्वारा उन्हीं व्यक्तियों को दी गई थी; और यह कहना संभव नहीं है कि ये भुगतान संपूर्ण मत्स्य क्षेत्र के लिए ₹135-7-0 के किसी निश्चित भाड़े की ओर किए गए थे। वर्ष 1876 से 1893 के मध्य इस मत्स्य क्षेत्र की स्थिति पूर्णतः अस्पष्ट बनी रहती है, क्योंकि उस अवधि के संबंध में कोई साक्ष्य अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं किया गया है। दिनांक 1 मई, 1894 को मोहन भगत के वंशज ने पांडब बेहेरा एवं फागु बेहेरा को ₹ 10 की एक रसीद दी, जिसे मत्स्य भाड़े के समायोजन हेतु माना जाना था। इस रसीद को अन्य रसीदों से जोड़ना अथवा इसे प्रतिवादियों के स्थायी काश्तकारी के दावे के समर्थन में साक्ष्य के रूप में स्वीकार करना

कठिन है। इसी प्रकार विभिन्न सह-भागीदारों द्वारा विभिन्न व्यक्तियों के पक्ष में 1 मई, 1895, 5 मई, 1896, 9 मई, 1897 तथा 22 अक्टूबर, 1899 को रसीदें निष्पादित की गईं; किन्तु उन रसीदों में से किसी में भी पूरे वर्ष के लिए समस्त जमींदारों को देय ₹135-7-0 के किसी निश्चित भाड़े का उल्लेख नहीं है। 22 अक्टूबर, 1899 को एक स्वामी की ओर से ग्राम अलसाही के हुर्शी बेहेरा एवं अगनी बेहेरा के पक्ष में एक मुद्रित किराया रसीद भी जारी की गई थी। उक्त रसीद में बारह आना के बकाया मत्स्य-भाड़े के भुगतान का उल्लेख है तथा उसमें यह भी कहा गया है कि देय नकद भाड़ा ₹150 था। यदि यह रसीद समस्त सह-भागीदारों को देय भाड़े से संबंधित मानी जाए, तो यह प्रतिवादियों के उस कथन के प्रतिकूल है कि मत्स्य क्षेत्र अनादिकाल से ₹135-7-0 के निश्चित भाड़े पर पट्टे पर दिया जाता रहा है। दिनांक 23 अगस्त, 1902 को जमींदारी के नौ आना सात पाई सह-भागीदारों की ओर से कालिया कोना के मगुनी बेहेरा एवं राम बेहेरा तथा किसी अन्य ग्राम के सपानी बेहेरा के पक्ष में ₹83-12-11 की रसीद दी गई, जिसमें यह उल्लेख था कि कुल भाड़े की राशि, जिसका ₹83-12-11 इन जमींदारों का अंश था, ₹135-7-0 थी। प्रतिवादियों की ओर से यह तर्क दिया गया कि इस रसीद में उल्लिखित ₹135-7-0 वही राशि है जो वर्ष 1842 की जमाबंदी में जलकर आय के रूप में जमींदारों को देय दर्शाई गई थी, और इससे यह निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि वर्ष 1842 से इस रसीद की तिथि तक मत्स्य क्षेत्र निरंतर इसी राशि पर पट्टे पर दिया जाता रहा। यद्यपि इस प्रकार का साम्य विद्यमान है, तथापि केवल इस आधार पर ऐसा निष्कर्ष निकालना संभव नहीं है, क्योंकि ऐसा निष्कर्ष मात्र अनुमान पर आधारित होगा। उक्त सभी रसीदें वादी के इस कथन के अनुकूल हैं कि समय-समय पर विभिन्न सह-भागीदार विभिन्न मछुआरों को निश्चित भाड़े के भुगतान पर मत्स्य क्षेत्र में मछली पकड़ने की अनुमति प्रदान करते रहे। इसी प्रकार की एक अन्य

रसीद दिनांक 5 मार्च, 1906 को जमींदारी में आठ पाई हिस्से के स्वामी कुछ सह-भागीदारों द्वारा कुछ मछुआरों के पक्ष में निष्पादित की गई, जिसमें वार्षिक भाड़ा ₹135-7-0 दर्शाया गया। "टिप्पणी स्तंभ" में यह उल्लेख है कि यदि वास्तविक भाड़ा इससे अधिक हुआ तो शेष राशि का भुगतान किया जाएगा। इस रसीद के संबंध में भी वही टिप्पणियाँ लागू होती हैं जो पूर्ववर्ती रसीद के संबंध में की गई हैं। अगली किराया रसीद दिनांक 19 अप्रैल, 1907 की है, जो ₹ 168-6-0 की राशि के लिए है। इस रसीद से किसी भी पक्ष के समर्थन में कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। दिनांक 21 जून, 1912 को वर्ष 1317 के भाड़े के संबंध में बारह व्यक्तियों के पक्ष में एक रसीद जारी की गई। उक्त रसीद जमींदारी के नौ आना सात पाई सह-भागीदार द्वारा दी गई थी, किन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि यह राशि किस प्रकार निर्धारित की गई। दिनांक 4 फरवरी, 1914 को जमींदारी में आठ पाई हिस्से के एक सह-भागीदार द्वारा 174 व्यक्तियों, जिन्हें काश्तकार बताया गया है और जो जमींदारी के विभिन्न गाँवों में निवास करते थे, के पक्ष में वर्ष 1319 के भाड़े के रूप में ₹ 5-13-0 की रसीद दी गई। "टिप्पणी" कॉलम में की गई प्रविष्टि पूर्वोक्त रसीद के समान है। वार्षिक भाड़ा ₹ 135-7-0 दर्शाया गया है तथा यह उल्लेख है कि इसका भुगतान न्यायालय के डिक्री सं. 181 के अनुसार किया जा रहा है। इस रसीद को पूर्व में विवेचित अन्य दस्तावेजों के साथ संबद्ध करना कठिन है। एक अन्य रसीद दिनांक 30 मार्च , 1914 को नौ आना सात पाई सह-भागीदारों द्वारा वर्ष 1320 के लिए बारह व्यक्तियों के पक्ष में दी गई। हमारे मत में विभिन्न सह-भागीदारों द्वारा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को समय-समय पर दी गई इन अनियमित रसीदों से पक्षकारों के अधिकारों के संबंध में कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। ये रसीदें वादी की उस दलील के अनुकूल हैं कि समय-समय पर अनुमति एवं अनुज्ञप्ति के आधार पर अनेक मछुआरे इन जलों में मछली पकड़ते रहे, और

ये आवश्यकतः इस निष्कर्ष की ओर नहीं ले जातीं कि प्रतिवादियों के पक्ष में ₹ 135-7-0 के निश्चित भाड़े पर मत्स्य क्षेत्र की कोई स्थायी काश्तकारी विद्यमान थी।

दिनांक 24 मई, 1914 के एक पंजीकृत विलेख द्वारा वादी ने पहली बार जमींदारी में आठ पाई का हित, अपनी पत्नी श्रीमती महिष्ठली पाटमहादेई के नाम पर, मोहन भगत के वंशज बलराम दास भगत से अर्जित किया। तत्पश्चात उसने अपने नाम से तथा कभी-कभी रानी के नाम से जमींदारी में कुछ और अंश क्रय किए और अंततः वह उसमें सात आना सात पाई एवं दस क्रांत हिस्से का स्वामी बन गया। वादी (आउल के राजा) द्वारा जमींदारी में हित का यह अधिग्रहण प्रथम विश्व युद्ध के काल से मेल खाता है, जिसके परिणामस्वरूप वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि हुई। मछली, जो पहले सस्ती वस्तु थी और जिससे न तो मछुआरों को और न ही स्वामियों को कोई उल्लेखनीय आय होती थी, अब पर्याप्त आय का स्रोत बन गई। इस परिस्थिति के कारण मत्स्य क्षेत्र के स्वामियों और मछुआरों के बीच विवाद उत्पन्न हुआ। वर्ष 1914 से 1918 के बीच के अनेक पत्र वादी की ओर से अभिलेख पर सिद्ध किए गए हैं, जिनसे यह दर्शित होता है कि वह इस मत्स्य क्षेत्र से आय प्राप्त कर रहा था। तत्पश्चात के वर्षों के भी इसी प्रकार के पत्र सिद्ध किए गए हैं, किन्तु प्राप्त आय का कोई नियमित लेखा-जोखा प्रस्तुत नहीं किया गया। मत्स्य क्षेत्र से आय में हुई वृद्धि के कारण जमींदारों और मछुआरों के बीच उसके कब्जे को लेकर प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हुई तथा शांति भंग होने की आशंका उत्पन्न हुई, जिसके परिणामस्वरूप दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अंतर्गत कार्यवाही प्रारंभ हुई। दिनांक 11 फरवरी, 1918 को पुलिस को यह प्रतिवेदन दी गई कि किल्ला मरीचपुर के जमींदारों और बारह मछुआरों के बीच देवी नदी के चरिखटिया मत्स्य क्षेत्र के कब्जे को लेकर ऐसा विवाद उत्पन्न हो गया है जिससे शांति भंग होने की संभावना है। दण्डाधिकारी ने पुलिस प्रतिवेदन प्राप्त होने

पर पक्षकारों को 19 फरवरी, 1918 के लिए नोटिस जारी किया तथा 10 जून, 1918 को प्रकरण का निर्णय किया। दण्डाधिकारी के आदेश से यह प्रतीत होता है कि सभी संबंधित व्यक्तियों को नोटिस दिया गया तथा उन्हें विवादित मत्स्य क्षेत्र के वास्तविक कब्जे से संबंधित अपने-अपने दावे प्रस्तुत करने हेतु आमंत्रित किया गया। कुछ सह-भागीदारों की ओर से यह सिद्ध करने हेतु साक्ष्य प्रस्तुत किया गया कि वे सुंदरी बेहेरा एवं लगभग 100 अन्य मछुआरों के माध्यम से मत्स्य क्षेत्र के कब्जे में थे। आउल की रानी, जिनके पास उस समय अपने पति की बेनामीदार के रूप में जमींदारी में आठ पाई का हित था, ने यह सिद्ध करने हेतु साक्ष्य प्रस्तुत किया कि वह अपने अभिकर्ता द्वारा नियोजित मछुआरों के माध्यम से मत्स्य क्षेत्र के कब्जे में थी। राम बेहेरा, हुर्शी बेहेरा तथा अन्य मछुआरे, जो द्वितीय पक्ष के बारह व्यक्तियों में सम्मिलित थे, ने यह सिद्ध करने हेतु साक्ष्य प्रस्तुत किया कि वे भाड़ा का भुगतान कर मत्स्य क्षेत्र के कब्जे में थे तथा जमींदारी के स्वामी कभी भी वास्तविक कब्जे में नहीं रहे। दण्डाधिकारी ने इस अभिकथन को सत्य पाया। उसने आउल की रानी द्वारा प्रस्तुत साक्षियों की कथा को अविश्वसनीय माना तथा अन्य स्वामियों के साक्षियों के कथनों को भी अस्वीकार कर दिया। रानी की ओर से कुछ आउल के मछुआरे प्रस्तुत किए गए थे, किन्तु उनका साक्ष्य भी स्वीकार नहीं किया गया। वादी की ओर से अभिलेख पर प्रस्तुत इसी प्रकार के दस्तावेजी साक्ष्य दण्डाधिकारी के समक्ष भी प्रस्तुत किए गए थे, किन्तु उन्हें भी उसने स्वीकार नहीं किया। इन कार्यवाहियों से यह भी स्पष्ट होता है कि किल्ला मरीचपुर के समस्त सोलह आना स्वामियों ने द्वितीय पक्ष, अर्थात् मछुआरों, को सितम्बर, 1917 से प्रभावी रूप से मत्स्य क्षेत्र का कब्जा त्यागने के लिए एक नोटिस जारी किया था, किन्तु नोटिस की सेवा के पश्चात उन्होंने उन्हें बेदखल करने के लिए कोई विधिक कदम नहीं उठाया; इसके विपरीत, उन्होंने बलपूर्वक कब्जा प्राप्त करने

के प्रयास किए, जो असफल रहे। इन कार्यवाहियों का परिणाम यह हुआ कि दण्डाधिकारी ने यह पाया कि मछुआरे (द्वितीय पक्ष) विवादित मत्स्य क्षेत्र के कब्जे में हैं, और उसने एक आदेश जारी करने का निर्देश दिया, जिसके द्वारा उनके कब्जे की घोषणा की गई तथा यह निर्देश दिया गया कि विधि की प्रक्रिया द्वारा विधिवत बेदखल किए जाने तक उनके कब्जे में कोई व्यवधान न डाला जाए। यह आदेश इस बात का संकेत देता है कि यद्यपि सभी जमींदारों के नाम वाद में पक्षकार के रूप में उल्लिखित नहीं थे, तथापि सभी को कार्यवाही की सूचना थी और सभी का हित मछुआरों को बलपूर्वक बेदखल करने में था, तथा उनकी ओर से ही नोटिस दिया गया था। यह भी प्रतीत होता है कि यद्यपि लगभग एक दर्जन व्यक्तियों को द्वितीय पक्ष के रूप में नामित किया गया था, तथापि उनके अतिरिक्त भी कुछ अन्य व्यक्ति मत्स्य क्षेत्र में हित रखते थे, किन्तु इन कार्यवाहियों से उनकी संख्या, नाम एवं पते का निर्धारण करना कठिन है। वादी की ओर से यह सिद्ध करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत किया गया कि उक्त कार्यवाहियों के उपरांत वादी ने आउल के मछुआरों के माध्यम से अपने अधिकार को पट्टे पर देकर इस मत्स्य क्षेत्र से आय अर्जित की; किन्तु उच्च न्यायालय ने इस साक्ष्य पर कोई विश्वास नहीं किया और हमारे मत में यह उचित है। यह विश्वास करना संभव नहीं है कि आपराधिक न्यायालय में सफल होने के पश्चात मछुआरे, राजा या रानी के लोगों को हिल्सा मौसम के दौरान इन जलों में मछली पकड़ने की अनुमति देते। दोनों पक्षों ने यह सिद्ध करने हेतु मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत किया कि प्रत्येक पक्ष हिल्सा मौसम के दौरान मत्स्य क्षेत्र में अनन्य मत्स्याधिकार का प्रयोग करता था। हमें उस साक्ष्य से अवगत कराया गया है और उसके परीक्षण के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वह असंतोषजनक प्रकृति का है तथा उसके आधार पर मूल्यवान अधिकारों का निर्धारण नहीं किया जा सकता। परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 47 के अनुसार

अपेक्षित तीन वर्षों की अवधि के भीतर जमींदारों द्वारा दण्डाधिकारी के आदेश को चुनौती देने हेतु कोई कदम नहीं उठाया गया। तथापि, कार्यवाही के समाप्त होने के पश्चात जमींदारों ने इन व्यक्तियों से कोई भाड़ा स्वीकार करने से इंकार कर दिया, और ये व्यक्ति उड़ीसा काश्तकारी अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत न्यायालय में भाड़ा जमा करते रहे।

आउल के राजा द्वारा जमींदारी में अंतिम अंश की खरीद वर्ष 1935 में की गई थी, और उस समय तक उसमें पर्याप्त हित अर्जित कर लेने तथा यह जान लेने के पश्चात कि मत्स्य क्षेत्र लाभदायक उपक्रम है, उसने वर्ष 1936 में, उपर्युक्त आरोपों के आधार पर, यह वाद दायर किया और यह अभिकथित किया कि लगभग तीन वर्षों से प्रतिवादी विवादित मत्स्य क्षेत्र में उसके कब्जे में बाधा उत्पन्न कर रहे हैं। उपर्युक्त परिस्थितियों में यह अभिकथन गंभीरता से स्वीकार्य नहीं है। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अंतर्गत हुई कार्यवाहियों के प्रभाव से बचने के उद्देश्य से उसने यह भी कहा कि उन कार्यवाहियों के बावजूद वह मत्स्य क्षेत्र के कब्जे में बना रहा और उसका कब्जा केवल हाल ही में बाधित हुआ है। इस बिंदु पर प्रस्तुत साक्ष्य को उच्च न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया, और हम इस निष्कर्ष से असहमत होने का कोई कारण नहीं देखते।

अब यह उपयुक्त है कि पक्षकारों की ओर से प्रस्तुत विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा हमारे समक्ष उठाए गए विभिन्न बिंदुओं पर विचार किया जाए। हमें उच्च न्यायालय का यह दृष्टिकोण स्वीकार करना कठिन प्रतीत होता है कि प्रतिवादी विवादित मत्स्य क्षेत्र के कब्जे में लुप्त अनुदान के आधार पर थे। यह सिद्धांत उन व्यक्तियों के मामलों पर लागू नहीं होता जो किसी विशेष क्षेत्र के निवासी होकर किसी भूमि या जल के उपयोग के अधिकार को स्थापित करना चाहते हैं। जैसा कि लॉर्ड रेडक्लिफ ने *लक्ष्मीधर मिश्र बनाम रंगलाल*[1] में इंगित किया है, लुप्त अनुदान का सिद्धांत एक तकनीकी उपाय के रूप में उत्पन्न हुआ था

1 (1) ए.आई.आर. 1950 पी.सी. 56।

ताकि अनादिकालीन उपयोग को सिद्ध करने की असंभवता के बावजूद उपभोगाधिकार द्वारा स्वत्व स्थापित किया जा सके; और चूँकि इसका आधार अनुदान है, अतः इसके धारक, चाहे मूल रूप से या उत्तराधिकार द्वारा, ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जो अनुदान प्राप्त करने में सक्षम हों। किसी गाँव के निवासियों द्वारा समय-समय पर प्रयोग किया जाने वाला अधिकार न तो किसी भूमि संपत्ति से संलग्न होता है और न ही ऐसा अधिकार है जिसे अनुदान का विषय बनाया जा सके, क्योंकि इसके लिए कोई निश्चित अथवा सक्षम अनुदान-प्राप्तकर्ता नहीं होता। इस संदर्भ में कलकत्ता उच्च न्यायालय के पीठ निर्णय *असराबुल्ला बनाम कियामतुल्ला*[2] का भी उल्लेख किया जा सकता है, जिसमें इस विषय के विधि सिद्धांतों का विस्तृत परीक्षण किया गया है। उस मामले में यह प्रश्न उठा था कि क्या पूरे गाँव के निवासियों द्वारा दावा किया गया चराई का अधिकार स्पष्ट अथवा अनुमानित अनुदान द्वारा अर्जित किया जा सकता है। अनेक अंग्रेज़ी एवं भारतीय वादों के परीक्षण के उपरांत यह निर्णय दिया गया कि किसी परिवर्तनशील एवं अनिश्चित व्यक्तियों के समूह, जो किसी गाँव के निवासी हैं, के पक्ष में लुप्त अनुदान की कल्पना नहीं की जा सकती, और ऐसा अधिकार केवल रिवाज के माध्यम से ही अर्जित किया जा सकता है। वर्तमान मामले में प्रतिवादी एक परिवर्तनशील समूह हैं, जिनकी संख्या जन्म, मृत्यु तथा इन गाँवों में मछुआरों के आगमन एवं निर्गमन के कारण निरंतर बढ़ती या घटती रहती है। बचाव साक्षी 11 के साक्ष्य से यह ज्ञात होता है कि पूर्व में मछली पकड़ने का अधिकार दावा करने वाले कौट (मछुआरे) चार गाँवों के निवासी थे; तत्पश्चात उनके कुछ घर बह जाने के कारण वे अन्य गाँवों में चले गए और वहाँ बस गए। वाद के समय वे नौ गाँवों में निवास कर रहे थे। उसने आगे यह भी कहा कि पिछले 10 या 12 वर्षों में लगभग 600 "बोहानिया" थे और उनके परिवारों की वृद्धि होकर वर्तमान संख्या 846 हो गई। साक्ष्य में यह भी दर्शित

2 ए.आई.आर. 1937 कैल. 45।

है कि इस साक्ष्य के पश्चात उनकी संख्या बढ़कर 1500 तक पहुँच गई। दस्तावेजी साक्ष्य से यह भी प्रतीत होता है कि वर्ष 1918 तक उनकी संख्या बहुत अधिक नहीं थी; धारा 145, दण्ड प्रक्रिया संहिता की कार्यवाही में केवल 12 व्यक्तियों को पक्षकार बनाया गया था और यह कहा गया था कि कुछ अन्य व्यक्ति भी हित रखते थे। एक-दो रसीदों में अधिकतम संख्या 174 व्यक्तियों की दर्शाई गई है।

यह भी स्वीकार करना संभव नहीं है कि इन गाँवों में निवास करने वाले मछुआरे किसी निगमित निकाय का गठन करते हैं और केवल मछुआरा होने के कारण वे स्वतः एकीकृत हो जाते हैं। हम उच्च न्यायालय के इस मत से सहमत नहीं हो सकते कि प्रतिवादी केवल इस आधार पर किसी प्रकार की एक इकाई का गठन करते हैं कि उनका इस मत्स्य क्षेत्र में मछली पकड़ने का एक समान हित है। जब तक प्रतिवादी-मछुआरे एक निगमित निकाय का गठन नहीं करते, अथवा यह सिद्ध नहीं होता कि उनके लाभ के लिए कोई न्यास सृजित किया गया था, तब तक ऐसे व्यक्तियों का समूह लुप्त अनुदान के सिद्धांत के आधार पर कोई अधिकार अर्जित नहीं कर सकता। केवल निवास के आधार पर मत्स्य क्षेत्र में मछली पकड़ने का अधिकार अनिश्चित सीमा तक बढ़ने योग्य है, और यदि ऐसा अधिकार किसी ऐसे समूह में निहित हो जिसकी संख्या निरंतर बढ़ सकती है, तो इससे अनिवार्यतः उस अनुदान के विषय-वस्तु का ही विनाश हो जाएगा। इसके अतिरिक्त, ऐसे व्यक्तियों के समूह को, जो उत्तराधिकार की किसी युक्तिसंगत अवधारणा के अंतर्गत नहीं आते, इस प्रकार का वैध अनुदान प्रदान करना संभव नहीं है जिससे प्रत्येक उत्तरवर्ती निवासी को अधिकार प्राप्त हो सके।

उपर्युक्त कारणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रतिवादियों का मत्स्य क्षेत्र के कब्जे में बने रहने का अधिकार, चाहे लुप्त अनुदान के आधार पर हो अथवा उपभोगाधिकार या प्रतिकूल कब्जा के आधार पर, अस्वीकार्य है। साक्ष्यों से केवल इतना ही स्पष्ट होता है कि समय-समय पर कुछ मछुआरे, कुछ स्वामियों की अनुमति एवं अनुज्ञप्ति से, मत्स्य क्षेत्र में मछली पकड़ते रहे हैं। यह परिस्थिति न तो प्रतिकूल कब्जा और न ही उपभोगाधिकार द्वारा अधिकार अर्जित करने के लिए पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त, उनके पक्ष में कोई निष्कर्ष इस कारण भी नहीं निकाला जा सकता कि साक्ष्य यह स्थापित नहीं करता कि वे एक समान रूप से समान राशि का भाड़ा नियमित रूप से अदा करते रहे हैं।

उच्च न्यायालय का यह अगला निष्कर्ष कि भारतीय परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 47 के प्रवर्तन के कारण जमींदारों ने विवादित मत्स्य क्षेत्र के खास कब्जे का अपना अधिकार खो दिया है, हमारे मत में सही है। तथापि, उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचने में त्रुटिपूर्ण रहा कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अंतर्गत पारित आदेश वादी पर पाँच पाई हिस्से तक बाध्यकारी नहीं था। उस आदेश के वास्तविक परिमाण एवं प्रभाव को पूर्णतः नहीं समझा गया प्रतीत होता है। यह आदेश सभी जमींदारों को नोटिस दिए जाने के पश्चात पारित किया गया था और यह उन सभी की कार्रवाई के परिणामस्वरूप हुआ था, अतः यह संपूर्ण सोलह आना जमींदारी हित पर बाध्यकारी है। स्पष्ट एवं असंदिग्ध शब्दों में दण्डाधिकारी ने यह घोषित किया कि द्वितीय पक्ष विवादित मत्स्य क्षेत्र के अनन्य कब्जे में है तथा जमींदारों को उनके कब्जे में व्यवधान डालने का कोई अधिकार नहीं है, और उन्हें अपने कब्जे के अधिकार को स्थापित करने हेतु वाद दायर करने का निर्देश दिया गया था। जमींदार ऐसा करने में असफल रहे, जिसके परिणामस्वरूप वह आदेश अंतिम हो गया और मत्स्य क्षेत्र के कब्जे में आने का उनका

अधिकार समाप्त हो गया। अतः इस आदेश ने प्रतिवादियों के मत्स्य क्षेत्र पर कब्जे को, एक निश्चित भाड़े के भुगतान के आधार पर, पुष्ट किया। किन्तु यह अधिकार केवल उन्हीं व्यक्तियों द्वारा प्रयोग किया जा सकता है जो धारा 145, दण्ड प्रक्रिया संहिता की कार्यवाही में पक्षकार थे या उनके हित के उत्तराधिकारी हैं। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि वर्ष 1918 की कार्यवाही वास्तव में धारा 147, दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत थी और उसे त्रुटिपूर्वक धारा 145 के अंतर्गत दर्शाया गया। हम इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं, क्योंकि वर्ष 1918 में उत्पन्न विवाद स्वयं मत्स्य क्षेत्र के कब्जे से संबंधित था तथा यह धारा 145 की भाषा में "भूमि या जल अथवा उसकी सीमाओं" से संबंधित विवाद था। धारा 145 की उपधारा (2) के अनुसार "भूमि या जल" की अभिव्यक्ति में मत्स्य क्षेत्र भी सम्मिलित है। इसके पश्चात यह तर्क दिया गया कि किसी भी स्थिति में धारा 145, दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत पारित आदेश का लाभ केवल उन्हीं व्यक्तियों को प्राप्त हो सकता है जिनके पक्ष में वह आदेश पारित किया गया था, और यह 18 प्रतिवादियों द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए सभी 846 मछुआरों अथवा भविष्य में इन नौ गाँवों में निवास करने वाले सभी मछुआरों के पक्ष में प्रभावी नहीं हो सकता। हमारे मत में यह तर्क युक्तिसंगत है, और उच्च न्यायालय द्वारा इसके विपरीत निष्कर्ष निकालना त्रुटिपूर्ण था। ऐसा कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जिससे यह सिद्ध हो सके कि धारा 145, दण्ड प्रक्रिया संहिता की कार्यवाही में द्वितीय पक्ष के रूप में उल्लिखित बारह व्यक्तियों के अतिरिक्त किन अन्य व्यक्तियों का उनके द्वारा प्रतिनिधित्व किया जा रहा था; अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए बाध्य हैं कि उस आदेश का लाभ केवल उन्हीं प्रतिवादियों को प्राप्त हो सकता है जो उन बारह व्यक्तियों द्वारा प्रतिनिधित्वित हैं। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने हमें उन व्यक्तियों की एक सूची प्रस्तुत की जो धारा 145

की कार्यवाही में पक्षकार थे तथा वर्तमान प्रतिवादियों में से वे कौन हैं जो उनके स्थान पर हैं। इस सूची के अनुसार प्रतिवादी सं. 1, 2, 3, 5, 6, 7, 9 एवं 12 वे व्यक्ति हैं, जो स्वयं अथवा अपने हित के पूर्ववर्तियों के माध्यम से पूर्ववर्ती कार्यवाही में पक्षकार थे और उन कार्यवाहियों के परिणाम का लाभ प्राप्त करने के अधिकारी हैं। अन्य सभी प्रतिवादी, चाहे वे इस वाद में व्यक्तिगत रूप से पक्षकार बनाए गए हों अथवा प्रतिनिधिक क्षमता में, या जिनका वे प्रतिनिधित्व करते हैं, उन कार्यवाहियों का लाभ उठाने के अधिकारी नहीं हैं। अतः परिणामतः उपर्युक्त प्रतिवादी ही ₹ 135-7-0 प्रति वर्ष के भाड़े के भुगतान पर मत्स्य क्षेत्र के कब्जे में बने रहने के अधिकारी हैं, जब तक कि विधि के अनुसार उस भाड़े में वृद्धि न की जाए अथवा किसी वैध कारण से वे उस कब्जे के अधिकार से वंचित न हो जाएँ। एक पूर्ववर्ती वाद में यह भी निर्णय दिया जा चुका है कि हिल्सा मौसम के दौरान मत्स्य क्षेत्र के कब्जे का अधिकार हस्तांतरणीय नहीं है; तथापि इसका उपभोग उत्तराधिकारियों एवं उत्तरवर्तियों द्वारा किया जा सकता है।

यह तर्क कि नदी के प्रवाह-पथ में परिवर्तन हो गया है और वर्तमान विवादित मत्स्य क्षेत्र वही नहीं है जो वर्ष 1918 की कार्यवाही में विवादित था, स्वीकार्य नहीं है। इस विषय में उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण से भिन्न होने का हमें कोई कारण नहीं दिखता कि नदी के प्रवाह में परिवर्तन से प्रतिवादियों के कब्जे पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ा है, क्योंकि मधुर्दिया अथवा चरखटिया मत्स्य क्षेत्र को निर्मित करने वाले चैनल, चाहे पुराने हों या नए, एक संयुक्त जलराशि का ही निर्माण करते हैं। यह विधि में स्थापित सिद्धांत है कि मछलियाँ नदी के प्रवाह का अनुसरण करती हैं और मछुआरे मछलियों का।

इसके पश्चात यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि किसी विशेष प्रकार की मछली अथवा किसी विशिष्ट मौसम के लिए अनन्य मत्स्याधिकार अर्जित नहीं किया जा सकता। धारा

145, दण्ड प्रक्रिया संहिता की कार्यवाही के आलोक में यह तर्क ग्राह्य नहीं है। इसके अतिरिक्त, किसी निश्चित स्थान पर अनन्य मत्स्याधिकार का अर्थ यह है कि उस अधिकार के दावेदार के साथ किसी अन्य व्यक्ति का समान विस्तार वाला अधिकार नहीं है। केवल इस तथ्य से कि किसी अन्य व्यक्ति को मत्स्य क्षेत्र में किसी विशेष प्रकार की मछली पकड़ने का अधिकार प्राप्त है, अथवा कोई अन्य व्यक्ति वर्ष के किसी विशेष समय में मछली पकड़ने का अधिकारी है, अनन्य मत्स्याधिकार किसी भी प्रकार से समाप्त नहीं होता (देखें हैल्सबरीज़ लॉज़ ऑफ इंग्लैंड, हेल्शम संस्करण, खंड 15, कंडिका 59)।

परिणामस्वरूप, यह अपील आंशिक रूप से स्वीकृत की जाती है। उच्च न्यायालय की डिक्री में संशोधन किया जाता है और वादी का वाद घोषणा तथा निषेधाज्ञा के लिए निम्न प्रकार से स्वीकृत किया जाता है :—

(i) यह घोषित किया जाता है कि वादी को विवादित मत्स्य क्षेत्र में मछली पकड़ने का अधिकार है, सिवाय हिल्सा मौसम (मार्गशीर्ष से बैसाख) के, जिसके दौरान प्रतिवादी सं. 1, 2, 3, 5, 6, 7, 9 एवं 12 को हिल्सा मछली के संबंध में मत्स्य क्षेत्र में अनन्य मत्स्याधिकार प्राप्त होगा, जिसका प्रयोग वे स्वयं अथवा अन्य मछुआरों की सहायता से, ₹ 135-7-0 प्रति वर्ष के भाड़े के भुगतान पर कर सकते हैं, जब तक कि विधि के अनुसार भाड़े में वृद्धि न हो जाए अथवा किसी उचित कारण से वे मत्स्य क्षेत्र के कब्जे में बने रहने के अपने अधिकार से वंचित न हो जाएँ;

(ii) प्रतिवादियों को उन महीनों के दौरान, जिनमें उपर्युक्त प्रतिवादियों को अनन्य मत्स्याधिकार प्राप्त नहीं है, वादी के मत्स्याधिकार में हस्तक्षेप करने से प्रतिबंधित किया जाता है;

(iii) प्रतिवादी 1, 2, 3, 5, 6, 7, 9 एवं 12 के अतिरिक्त अन्य सभी प्रतिवादियों को इस मत्स्य क्षेत्र में किसी भी प्रकार का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है और वे वादी के अधिकारों में हस्तक्षेप नहीं कर सकते। प्रकरण की परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए, इस अपील में व्यय के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया जाता।

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत।

अपीलकर्ता के अभिकर्ता : *एस. पी. वर्मा*

प्रतिवादियों के अभिकर्ता : *आर. सी. प्रसाद*

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।